

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 18: परीक्षित को शाप

11 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



कौशिकी नदी के जल के समीप, बालक ऋषि श्रृंगी, क्रोध से रक्तवर्ण नेत्रों के साथ, वह शाप देते हैं जो सात दिनों में धर्मात्मा राजा परीक्षित पर आ पड़ेगा।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

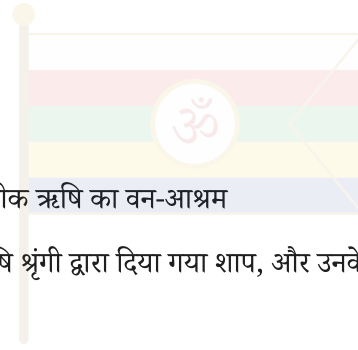
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। प्रथम स्कन्ध के इस अठारहवें अध्याय में पूज्य सूत जी सम्पूर्ण भागवत के सबसे मार्मिक मोड़ों में से एक को उद्घाटित करते हैं — वह क्षण जब एक क्रुद्ध बालक का एक कठोर वचन एक धर्मात्मा सम्राट की मृत्यु की गति को आरम्भ कर देता है। फिर भी उस शोक में शास्त्र एक महान कोमलता छिपाये रखता है: मृत्यु के समक्ष एक भक्त की निर्भयता, एक सच्चे सन्त का संयम, और उस आत्मा की शान्त महानता जो संसार के आघातों पर न शोक करती है न हर्ष। आइए, श्रद्धापूर्वक सुनें।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 18 (अठारहवाँ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: एक ब्राह्मण बालक द्वारा महाराज परीक्षित को शाप
- प्रमुख वक्ता: पूज्य सूत जी, उग्रश्रवा, प्राचीन कथाओं के वक्ता
- प्रमुख श्रोता: शौनक ऋषि तथा नैमिषारण्य में एकत्र ऋषिगण
- मुख्य स्थल: नैमिषारण्य की ऋषि-सभा, तथा कौशिकी नदी के तट पर शमीक ऋषि का वन-आश्रम
- केन्द्रीय विषय: राजा परीक्षित के अन्तिम प्रयाण का कारण — बालक ऋषि श्रुंगी द्वारा दिया गया शाप, और उनके पिता शमीक की अनुकरणीय क्षमाशीलता
- प्रमुख श्लोक-परिधि: स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 1–50
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय का सन्दर्भ

सत्रहवें अध्याय में सम्राट परीक्षित ने राजचिह्नों से सज्जित एक नीच पुरुष को देखा — वह कलि था छद्मवेश में — जो एक गाय और एक बैल को निर्दयता से पीट रहा था, जिन रूपों में पृथ्वी माता और धर्म असहाय होकर काँप रहे थे। राजा ने उस दुष्ट को रोका, शरण माँगने पर उसके प्राण बचाये, और कलि के प्रभाव को कुछ अपवित्र स्थानों तक सीमित कर दिया, ताकि धर्म बना रहे। उसी धर्ममय शासन के फल से यह अध्याय आरम्भ होता है।

राजा परीक्षित का धन्य अन्त

सूत जी अपनी कथा पुनः आरम्भ करते हैं, और वे राजा के पतन से नहीं, राजा की महिमा से आरम्भ करते हैं। यद्यपि अश्वत्थामा के अग्निमय अस्त्र से माता के गर्भ में ही झुलस गये थे, फिर भी शिशु परीक्षित नष्ट नहीं हुए — अद्भुत कर्मों वाले भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा ने उनकी रक्षा की। और जब, अपनी आयु की पूर्णता में, उन्हें ज्ञात हुआ कि एक ब्राह्मण बालक (पुरोहित-कुल में जन्मे, वेदाध्ययन-सम्पन्न वर्ण का बालक) के शाप से प्रेरित होकर तक्षक सर्प के दंश से उन्हें सात दिनों में मरना है, तब उन्हें तनिक भी भय न हुआ। अपना सम्पूर्ण हृदय भगवान् को अर्पित कर, उन्होंने प्रत्येक आसक्ति त्याग दी, सुकदेव जी का शिष्यत्व स्वीकार किया, श्रीहरि के तत्त्व का साक्षात्कार किया, और गंगा के तट पर शान्तिपूर्वक अपना शरीर त्याग दिया।



समस्त भय से मुक्त राजा परीक्षित गंगा के तट पर सुकदेव जी की शिक्षाएँ ग्रहण करते हैं (श्लोक 3-4)।

क्योंकि जो केवल कृष्ण की चर्चा करते हैं, उनकी अमृतमयी कथाओं का रसपान करते हैं, और उनके चरणकमलों का ध्यान करते हैं, उनके हृदय में मृत्यु के समय भी कोई भ्रम नहीं उठता। सूत जी इसे केवल परीक्षित का सौभाग्य नहीं, अपितु आध्यात्मिक पथ का एक स्थिर नियम बताते हैं:

नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् । स्यात्सम्भ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥

नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् स्यात्सम्भ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥

अर्थ: जीवन के अन्तिम क्षण में भी उन्हें कोई मोह नहीं होता जो अनुपम कीर्तिवाले भगवान् की अमृतमयी कथाओं में रमते हैं और उनके चरणकमलों का निरन्तर स्मरण करते हैं। (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 4)

यहाँ, आरम्भ में ही, भागवत भगवान् को समर्पित जीवन का पुरस्कार शान्ति से उद्धाटित कर देता है: भय से रहित एक मृत्यु।

काले क्यों प्रबल न हो सका

तब सूत जी हमारे इस युग के विषय में एक गूढ़ सत्य समझाते हैं। जब तक महान राजा परीक्षित पृथ्वी पर उसके अद्वितीय सम्राट के रूप में शासन करते रहे, तब तक कलियुग — यद्यपि उसने प्रत्येक दिशा में प्रवेश कर लिया था — कोई वास्तविक शक्ति नहीं पा सका।

तावत्कलिर्न प्रभवेत् प्रविष्टोऽपीह सर्वतः । यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥

तावत्कलिर्न प्रभवेत् प्रविष्टोऽपीह सर्वतः यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥

अर्थ: जब तक अभिमन्यु के पराक्रमी पुत्र परीक्षित एकमात्र सम्राट के रूप में शासन करते रहे, तब तक कलि पृथ्वी पर प्रभावी न हो सका, यद्यपि वह सब ओर से प्रवेश कर चुका था। (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 5)

वस्तुतः कलि ने उसी क्षण पृथ्वी पर पग रख दिया था जब भगवान् अपने धाम को प्रस्थान कर गये। फिर भी सम्राट ने, उस भ्रमर के समान जो प्रत्येक पुष्प से केवल मधु ग्रहण करता है, कलि से कोई द्वेष नहीं रखा — क्योंकि वे जानते थे कि इस युग में शुभ संकल्प तत्काल फल देते हैं, जबकि पाप-कर्म तभी फल देते हैं जब वे वस्तुतः किये जाते हैं, अतः सजग हृदय को भय कम ही है। और अन्ततः कलि है ही क्या? वह तो कायरों का अत्याचारी है।

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा । अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥ ८ ॥

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥ ८ ॥

अर्थ: उस कलि का क्या मूल्य, जो केवल अज्ञानियों के बीच शूरवीर है परन्तु ज्ञानियों के समक्ष कायर, और जो भेड़िये के समान असावधान मनुष्यों को अचानक अपना ग्रास बना लेता है? (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 8)



जब तक धर्मात्मा सम्राट शासन करता है, कलि की छाया भूमि के छोर पर निःशक्त बनी रहती है (श्लोक 5-8)।

शिक्षा कोमल किन्तु दृढ़ है: इस युग का अन्धकार केवल असावधानों पर शक्ति रखता है। सजग और भक्तिमय जनों के लिए वह एक ऐसा भेड़िया है जो समीप आने का साहस नहीं करता।

सूत जी का सारांश और ऋषियों का आशीर्वाद

राजा परीक्षित के पवित्र जीवन की — जो श्रीकृष्ण, वसुदेव-नन्दन की कथा से बँधा है — कथा कहकर सूत जी ऋषियों से कहते हैं कि यही तो उनकी जिज्ञासा का विषय था। भगवान् ने स्मरण करने योग्य असंख्य कर्म किये; अतः जो परम कल्याण चाहते हैं उन्हें एकाग्रचित्त होकर उनकी महिमा सुननी चाहिए।

नैमिषारण्य के ऋषिगण उन्हें आशीर्वाद देने को उमड़ पड़ते हैं। “हे शुभ सूत,” वे कहते हैं, “आप अनगिनत वर्षों तक जीवित रहें — आप जो हमारे लिए श्रीकृष्ण की निर्मल, अमृतमयी महिमा उँडेल रहे हैं। हमारे शरीर इन दीर्घ यज्ञ-अग्नियों के धूम से मलिन हैं, जिनका फल अनिश्चित है; फिर भी आप हमें गोविन्द के चरणकमलों से बहते मधु का पान कराते हैं। हम भगवान् के प्रेमी भक्तों की एक क्षण की संगति को भी न स्वर्ग-सुख से बदलेंगे, न मोक्ष से, फिर मनुष्यों के क्षणिक भोगों की तो बात ही क्या।” सचमुच, वे कहते हैं, ऐसी संगति के समक्ष और कुछ भी तुलनीय नहीं:

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ १३ ॥

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ १३ ॥

अर्थ: भक्त की एक क्षण की संगति की तुलना स्वर्गलोकों से या पुनर्जन्म से मुक्ति से भी नहीं की जा सकती — फिर उन क्षणिक वरदानों की तो बात ही क्या, जिनके पीछे मरणशील मनुष्य दौड़ते हैं। (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 13)

सच्चे रस वाला कौन प्राणी, वे पूछते हैं, भगवान् की कथा से कभी तृप्त हो सकता है — उस भगवान् की, जिनके गुणों को शिव और कमलासन ब्रह्मा जैसे योगेश्वर भी कभी समाप्त नहीं कर पाये? और इसी से वे सूत जी से श्रीहरि के उत्तम कर्मों को विस्तार से कहने की प्रार्थना करते हैं।

सूत जी की विनम्रता और नाम की महिमा

आगे बढ़ने से पूर्व सूत जी अपने विषय में मन को छू लेने वाली विनम्रता से कहते हैं। यद्यपि मैं मिश्र योनि में जन्मा हूँ, वे कहते हैं, फिर भी मेरा नीच जन्म आज श्रेष्ठ पुरुषों की सेवा से सार्थक हो गया — क्योंकि पवित्र हृदय वालों के साथ वार्तालाप भी निन्दित जन्म के दुःख को शीघ्र दूर कर देता है। फिर उसके लिए तो और भी, जो भगवान् के नाम का उच्चारण करता है, जिन्हें ज्ञानीजन “अनन्त” — अर्थात् “जिसका अन्त नहीं” — कहते हैं, क्योंकि उनके गुणों की, उनके स्वरूप की भाँति, कोई सीमा नहीं। वे कितने अद्वितीय हैं, यह दशनि के लिए सूत जी स्मरण कराते हैं कि स्वयं लक्ष्मी जी ने उनके चरणों की धूलि की कामना की, यद्यपि भगवान् ने उन्हें नहीं चाहा; और वह पवित्र जल जिसने उनके चरण धोये — गंगा के रूप में बहता हुआ — शिव सहित सम्पूर्ण विश्व को पवित्र करता है। इस संसार में और कौन है, वे पूछते हैं, जो सचमुच *भगवान्* नाम के योग्य हो?

ऐसा प्रेम आत्मा को सर्वथा बदल देता है, सूत जी कहते हैं। जो ज्ञानी ऐसे भगवान् के प्रति प्रेम जगाते हैं, वे बिना पीछे मुड़े देखे शरीर और उससे जुड़े सम्बन्धों के प्रति गहरी आसक्ति त्याग देते हैं, और तत्काल उस परम अवस्था में प्रवेश करते हैं — परमहंस की उस अवस्था में, जिसका स्वभाव ही अहिंसा और अन्तः शान्ति है:

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् । व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥ २२ ॥

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीराः व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥ २२ ॥

अर्थ: जिन स्थिर आत्माओं का प्रेम भगवान् से बँध जाता है, वे शरीर और परिवार की उलझी आसक्ति को तत्काल त्याग देती हैं, और परमहंस की उस अन्तिम, हंस-सदृश अवस्था में प्रवेश करती हैं, जिसका सम्पूर्ण धर्म ही अहिंसा और भीतरी स्थिरता है। (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 22)

“हे सूर्य के समान देदीप्यमान ऋषियो,” सूत जी कहते हैं, “जो आपने पूछा, वह मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपसे कहूँगा। जैसे पक्षी आकाश में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उड़ते हैं, वैसे ही विद्वान् सर्वव्यापी भगवान् की लीलाओं का वर्णन अपनी-अपनी समझ के अनुसार करते हैं।” इस श्रद्धामय विनम्रता के साथ वे कथा की ओर मुड़ते हैं।

राजा, आखेट, और मौन ऋषि

एक दिन राजा परीक्षित, हाथ में धनुष लिए, वन में आखेट कर रहे थे। शिकार का पीछा करते हुए वे थक गये, और उन्हें तीव्र भूख-प्यास ने घेर लिया। समीप कहीं जल न पाकर वे शमीक ऋषि के सुविख्यात आश्रम में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने उस तपस्वी को पूर्णतः निश्चल, नेत्र मूँदे बैठे देखा।



आखेट से थके और प्यासे राजा परीक्षित वन-आश्रम में प्रवेश करते हैं और शमीक ऋषि को गहन समाधि में लीन पाते हैं (श्लोक 24-27)।

ऋषि ने अपनी इन्द्रियों, प्राण, मन और बुद्धि को पूर्ण नियन्त्रण में कर लिया था; संसार से विरत होकर, वे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे उस अपरिवर्तनीय अवस्था में पहुँच गये थे, और ब्रह्म से एक हो गये थे। उनका शरीर बिखरी जटाओं और कृष्णमृग के चर्म से ढका था। उन्हें इस अवस्था में देखकर राजा ने — उनकी जीभ सूख रही थी — उनसे जल माँगा। परन्तु संसार की समस्त चेतना से परे लीन वह ऋषि कोई उत्तर न दे सका।

एक अस्वाभाविक क्रोध

न बैठने को कुश का आसन मिला, न हाथ धोने को जल, न एक भी मधुर वचन — राजा ने स्वयं को अपमानित अनुभव किया, और क्रुद्ध हो उठे। भूख-प्यास से पीड़ित होकर उनमें सहसा उस ऋषि के प्रति शत्रुता और क्रोध का भाव उठ आया — ऐसा भाव, हे शौनक, जो उन्होंने किसी ब्राह्मण के प्रति पहले कभी नहीं रखा था। और जाते समय उन्होंने पास पड़े एक मृत सर्प को उठाकर अपने धनुष की नोक से उस मौन ऋषि के कन्धे पर डाल दिया; फिर वे अपनी राजधानी लौट गये।



प्यास और थकान से उपजे क्रोध के एक क्षण में, राजा धनुष की नोक से ध्यानस्थ ऋषि के कन्धे पर एक मृत सर्प रख देते हैं (श्लोक 30)।

भागवत सावधानी से हमें दिखाता है कि यह राजा का सच्चा स्वभाव नहीं था अपितु एक क्षणिक बादल था — एक महान और धर्मात्मा आत्मा की एक पल की दुर्बलता, जो उनके शारीरिक कष्ट से उपजी थी (श्लोक 24–28)।

अपनी राजधानी लौटने के बाद ही उनके मन में एक शंका उठी: क्या ऋषि सचमुच इन्द्रियों से परे समाधि में लीन थे, या उन्होंने केवल एक ऐसे क्षत्रिय का स्वागत टालने के लिए, जिसे वे सच्चे ऋषि-सत्कार के अयोग्य समझते थे, वह निश्चलता का ढोंग रचा था (श्लोक 31)? शास्त्र इस प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ देता है, क्योंकि यह संशय राजा के व्याकुल मन का था, ऋषि के विषय में किसी तथ्य का नहीं।

बालक ऋषि का शाप

शमीक का एक पुत्र था — कोमल वय का किन्तु प्रचुर तेज वाला बालक, नाम श्रृंगी — जो उस समय अन्य ब्राह्मण बालकों के साथ समीप ही खेल रहा था। जब उसने सुना कि राजा ने उसके पिता का अपमान किया है, तब वह बालक क्रोध से धधक उठा। उसने उन शासकों की भर्त्सना की जो “कौओं के समान मोटे हो गये हैं,” वे सेवक जो उन्हीं स्वामियों का अपमान करने का साहस करते हैं जिनकी रक्षा के लिए वे नियुक्त हुए थे। और अपने यौवन के गर्व में उसने घोषणा की:

कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् । तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥ ३५ ॥

कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥ ३५ ॥

अर्थ: “अब जब भगवान् कृष्ण, पथभ्रष्टों का दण्ड देने वाले, प्रस्थान कर गये, तब आज मैं उन्हें दण्डित करूँगा जिन्होंने मर्यादा का उल्लंघन किया है। देखो मेरा बल!” (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 35)

तब कौशिकी नदी का जल आचमन कर, क्रोध से रक्तवर्ण होते नेत्रों के साथ, बालक ने अपना शाप वज्र के समान फेंका:

इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि । दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥ ३७ ॥

इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥ ३७ ॥

अर्थ: “मेरे द्वारा प्रेरित होकर सर्पराज तक्षक आज से सातवें दिन उस कुल-कलंक को डूँसेगा, जिसने मेरे पिता के प्रति शत्रुता से समस्त मर्यादा का उल्लंघन किया है।” (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 37)

क्रोध के उस एक क्षण में एक सम्राट का भाग्य निश्चित हो गया। शास्त्र आवेश में दिये गये शाप के संकट को नहीं छिपाता — भले ही देने वाले की आध्यात्मिक शक्ति वास्तविक हो, और उसका दुःख, ऊपरी दृष्टि से, न्यायसंगत प्रतीत हो।

फिर भी भागवत हमें इसे मात्र दुर्घटना मानकर सन्तुष्ट नहीं होने देता। राजा के इस असाधारण क्रोध और उसे भड़काने वाली उपेक्षा की चुभन (श्लोक 24–25, 28) के पीछे, और उस संशय के पीछे भी जो घर लौटते समय उन्हें कचोटता रहा (श्लोक 31), परम्परा भगवान् का ही अदृश्य हाथ देखती है — जो चुपचाप ऐसी परिस्थितियाँ रच रहा था जो परीक्षित को उनके सिंहासन से अलग कर उन्हें सुकदेव जी के चरणों तक ले जातीं, जिससे संसार के कल्याण के लिए स्वयं श्रीमद्भागवत का प्राकट्य हो सके। शमीक भी घटना को इसी दृष्टि से देखते हैं: अपने पुत्र की शक्ति पर सन्तोष मनाने के बजाय वे खुले रूप से शोक करते हैं (श्लोक 49), मानो यह अनुभव करते हों कि उस एक सप्ताह की सतह के नीचे किसी पिता के आहत सम्मान से कहीं बड़ा प्रयोजन गतिमान था।

पिता का शोक और क्षमा

बालक आश्रम लौटा और, अपने पिता के गले में मृत सर्प देखकर, फूट-फूटकर रोया। पुत्र का विलाप सुनकर शमीक ऋषि — अंगिरा के वंशज — ने धीरे-धीरे नेत्र खोले, सर्प को उतार फेंका, और कोमलता से पूछा कि बालक क्यों रो रहा है और किसने उसे पीड़ा दी है। जब बालक ने सब घटना कह सुनाई, तब ऋषि ने शाप पर हर्ष नहीं किया। वे शोकग्रस्त हो गये।



समाधि से जागकर शमीक ऋषि अपने पुत्र के आवेशपूर्ण शाप पर शोक करते हैं और निर्दोष राजा की क्षमा के लिए प्रार्थना करते हैं (श्लोक 38-48)।

निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत् । अहो बतांहो महदद्य ते कृत- मल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥ ४१ ॥

निशम्य शप्तम् अतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणो न आत्मजम् अभ्यनन्दत् अहो बतांहो महदद्य ते कृतम् अल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥ ४१ ॥

अर्थ: यह सुनकर कि राजा — जो ऐसे शाप के योग्य कदापि नहीं थे — शापित हो गये हैं, ऋषि ने अपने पुत्र की प्रशंसा नहीं की, अपितु कहा: “अरे बालक! आज तूने महान पाप किया है; एक तुच्छ अपराध के लिए तूने भयंकर दण्ड दे दिया।” (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 41)

ऋषि ने समझाया कि राजा तो स्वयं परमेश्वर का नाम धारण करता है और अपरिपक्व बुद्धि से उसे कभी साधारण मनुष्यों की कसौटी पर नहीं तौलना चाहिए — क्योंकि उसकी ही असह्य शक्ति से प्रजा भयमुक्त और सर्व-कल्याण से युक्त रहती है:

न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं सम्मातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे । यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥ ४२ ॥

अलक्ष्यमाणे नरदेवनान्मि रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः । तदा हि चौरप्रचुरो विनङ्क्ष्य- त्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत् क्षणात् ॥ ४३ ॥

न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं सम्मातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥ ४२ ॥

अलक्ष्यमाणे नरदेवनान्मि रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः तदा हि चौरप्रचुरो विनङ्क्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत् क्षणात् ॥ ४३ ॥

अर्थ: हे बालक, परमेश्वर का ही नाम धारण करने वाले राजा को अपरिपक्व निर्णय से मत तौलो; उसकी ही असह्य शक्ति प्रजा को भयमुक्त और सुरक्षित रखती है। यदि यह उपस्थिति — राजा के नाम से विद्यमान भगवान् की ही शक्ति — अलक्षित हो जाए, तो क्षणभर में संसार चोरों से भर जाएगा, जैसे रखवाले-रहित भेड़ों का झुण्ड। (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 42-43)

जब ऐसा राजतन्त्र समाप्त हो जाता है, शमीक ने चेताया, तब दुष्टों द्वारा प्रजा के धन की लूट से सर्वत्र हिंसा और शोक फैलता है, और वर्णाश्रम की सम्पूर्ण मर्यादित व्यवस्था बिखर जाती है, यहाँ तक कि एक ऐसी पीढ़ी उत्पन्न होती है जो कुत्तों और बन्दरों से अधिक अनुशासित नहीं रह जाती, वैदिक मार्ग से भटककर (श्लोक 44-45)। इसके अतिरिक्त, परीक्षित स्वयं महायशस्वी सम्राट, धर्म के रक्षक, भगवान् के भक्त और

अनेक अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजर्षि थे; भूख, प्यास और थकान से पीड़ित और नितान्त असहाय, उन्होंने शाप के योग्य कुछ नहीं किया था। शमीक केवल यही प्रार्थना कर सके कि विश्व की आत्मा भगवान् उस अपराध को क्षमा करें जो उनके बालक ने भगवान् के अपने निर्दोष सेवक के प्रति किया। क्योंकि, उन्होंने कहा, यही तो भक्त का लक्षण है:

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि । नास्य तत् प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥ ४८ ॥

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि नास्य तत् प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥ ४८ ॥

अर्थ: तिरस्कृत, ठगे गये, शापित, उपेक्षित, अथवा प्रहार किये जाने पर भी, भगवान् के भक्त शक्ति रखते हुए भी अपराधी से प्रतिशोध नहीं लेते। (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 48)

अपने ही पुत्र के अपराध पर ऋषि इतने दुःखी हुए कि उन्होंने राजा द्वारा किये अपने प्रति अपराध पर विचार तक न किया। और इसी के साथ सूत जी सन्तों के विषय में एक अन्तिम, देदीप्यमान सत्य प्रस्तुत करते हैं:

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः । न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥ ५० ॥

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥ ५० ॥

अर्थ: प्रायः इस संसार में साधुजन, जब दूसरे उन्हें सुख-दुःख की परिस्थितियों में डालते हैं, तब न व्यथित होते हैं न हर्षित; क्योंकि आत्मा तो सदा तीनों गुणों — सत्त्व, रज और तम, अर्थात् सद्गुण, राग और अज्ञान की उन तीन प्रकृतियों — से परे है, जो समस्त सांसारिक अनुभव को रंग देती हैं। (स्कन्ध 1, अध्याय 18, श्लोक 50)

प्रमुख शिक्षाएँ

1. भगवान् को समर्पित जीवन भय के बिना समाप्त होता है। परीक्षित, मृत्यु को सात दिन दूर जानकर भी, निर्भय रहे (श्लोक 2-4)। जिसने अपना हृदय कृष्ण को अर्पित किया है वह मृत्यु से भी शान्ति में मिलता है।
2. युग का अन्धकार केवल असावधानों पर शक्ति रखता है। जब तक एक सजग, धर्मात्मा राजा शासन करता रहा, कलि पृथ्वी को छू न सका (श्लोक 5), और भेड़िये के समान केवल असावधानों को ग्रसता है (श्लोक 8)। सजगता और भक्ति ही हमारी रक्षा है।
3. सन्तों की संगति स्वयं स्वर्ग से भी बढ़कर है। ऋषिगण भगवान् के भक्तों की एक क्षण की संगति को न स्वर्ग-सुख से बदलते, न मोक्ष से (श्लोक 13) — सत्संग के मूल्य का एक हृदयस्पर्शी मापदण्ड।
4. क्रोध, भले ही दुःख न्यायसंगत लगे, विनाश लाता है। श्रृंगी की शक्ति वास्तविक थी और अपमान का बोध समझ में आने योग्य, फिर भी उसका शाप “महान पाप” था (श्लोक 41)। संयम रहित धर्म-क्रोध विनाश बन जाता है।
5. सत्ता श्रद्धा और धैर्य के योग्य है। धर्म की रक्षा करने वाला राजा स्वयं परमेश्वर का नाम धारण करता है, और उसकी ही असह्य शक्ति प्रजा को निर्भय रखती है (श्लोक 42-43); जहाँ ऐसी रक्षा हटती है, वहाँ समाज अव्यवस्था में बिखर जाता है। सम्मान और सहनशीलता उन्हीं के अधिकार में है जो लोककल्याण की रक्षा करते हैं।

6. सच्चा भक्त प्रतिशोध नहीं लेता। प्रहार करने में समर्थ होते हुए भी भक्त अपराध का बदला अपराध से नहीं देता (श्लोक 48)। यह अप्रतिशोध दुर्बलता नहीं, अहंकार से परे स्थित आत्मा का बल है।

7. सन्त सुख-दुःख से अविचल रहता है। शमीक ने न अपनी पीड़ा को सँजोया न पुत्र की शक्ति पर हर्ष किया (श्लोक 49-50), क्योंकि जागृत आत्मा तीनों गुणों से परे विश्राम करती है।

एक भक्ति-चिन्तन

यह अध्याय दो हृदयों को साथ-साथ रखता है, और हमसे शान्ति से पूछता है कि हम किसके समान बनेंगे। एक ओर श्रृंगी है — युवा, प्रतिभाशाली, आध्यात्मिक रूप से शक्तिशाली, और अपने पिता के प्रति प्रेम में पूर्णतः सच्चा। उसका क्रोध दुष्टता नहीं है; वह वह उत्साह है जिसकी लगाम छूट गयी है। और दूसरी ओर शमीक है — वृद्ध, मौन, अपने ही शरीर में अपमानित, फिर भी प्रतिकार करने में असमर्थ, केवल इस बात पर शोकेत कि उनके घर से एक निर्दोष पुरुष का अनिष्ट हुआ। इन दोनों के बीच सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन की दूरी है: शक्ति से शान्ति तक की दूरी, सही होने से भले होने तक की दूरी। यह विचारणीय है कि परीक्षित की मृत्यु की महान त्रासदी किसी असुर या खलनायक से नहीं, अपितु एक भले बालक के अनियन्त्रित क्रोध से आरम्भ होती है। कितनी बार हमारी अपनी शान्ति महान बुराइयों से नहीं, अपितु छोटे, तप्त, आत्म-न्यायी क्षणों से भंग होती है। भागवत हमारे समक्ष उस सन्त की शान्त महानता रखता है जिसने अपने हृदय को स्थिर रखना सीख लिया है, और कोमलता से हमें उसकी ओर बुलाता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जब कोई अपमान या उकसावा आपके भीतर क्रोध जगाये — कोई कठोर वचन, कोई अशिष्टता, कोई अन्याय — उत्तर देने से पूर्व रुकें, और मन ही मन भगवान् के किसी एक पवित्र नाम का उच्चारण करें। नाम को आघात और आपकी प्रतिक्रिया के बीच आने दें, जैसे शमीक का धैर्य उनके पुत्र की अग्नि और उनके अपने हृदय के बीच आया। स्मरण की एक ही श्वास शाप को आशीर्वाद में बदल सकती है।

उपसंहार

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध का अठारहवाँ अध्याय समाप्त होता है — वह कथा कि किस प्रकार धर्मात्मा सम्राट परीक्षित, जो गर्भ में कृष्ण द्वारा रक्षित और मृत्यु के समक्ष निर्भय थे, एक बालक के आवेशपूर्ण वचन से शापित हो गये। श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 18 में हम देखते हैं कि क्रोध की एक चमक एक सर्प को उसके सात-दिवसीय पथ पर भेज देती है, और हम देखते हैं कि एक सच्चा सन्त क्रोध में क्रोध जोड़ने से इनकार कर देता है, अपितु उसी राजा की क्षमा के लिए प्रार्थना करता है जिसने उसे पीड़ा दी। सूत जी ने हमें एक भक्त की निर्भयता और एक ऋषि की क्षमाशीलता दोनों दिखाई हैं, और स्मरण कराया है कि कलि की शक्ति केवल असावधान हृदय तक पहुँचती है। अब कथा राजा की अपनी प्रतिक्रिया की ओर झुकती है — कि परीक्षित अपनी मृत्यु का समाचार कैसे ग्रहण करेंगे, और सुकदेव जी उनके पास कैसे आयेंगे — परन्तु यह अध्याय अपना कोष हमें दे चुका है: कि भगवान्-लीन आत्मा की शान्ति किसी भी शक्ति से बढ़कर है, और भगवान् का नाम प्रत्येक परीक्षा में हमारा आश्रय है।

श्रीमद्भागवत की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

सन्दर्भ और आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम स्कन्ध, अठारहवाँ अध्याय, ग्रन्थ पृष्ठ 74-78।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट। पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-18-parikshit-cursed-by-a-brahmana-boy.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

